गीत : अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की सहजता

❑ अमित प्रभाकर

डॉ0 शान्ति सुमन समकालीन हिन्दी गीतों के संसार का एक सुपरिचित नाम है। नवगीत और जनवादी गीत के बड़े रचनाकारों में एक डॉ0 शान्ति सुमन का स्थान अपनी विधा की गीत कवयित्रियों में सर्वोच्च है। कवि–सम्मेलनों के माध्यम से लगातार चौंतीस वर्षों तक काव्य–मंच पर धूम मचाने वाली सुकंठ गीतकार शान्ति सुमन पूरे देश में अपनी पहचान बना चुकी हैं। इनका पहला नवगीत संग्रह 'ओ प्रतीक्षित' सन् 1970 में प्रकाशित हुआ जबकि दूसरा नवगीत संग्रह 'परछाईं टूटती' 1978 में छपा। इनके 'सुलगते पसीने' 1979, 'पसीने के रिश्ते' 1980, 'मौसम हुआ कबीर' 1985, 'मेघ इन्द्रनील' (मैथिली गीत–संग्रह) 1991, 'तप रहे कचनार' 1997, 'भीतर–भीतर आग' 2002, 'पंख–पंख आसमान' (एक सौ एक चुने गीतों का संग्रह) 2004, 'एक सूर्य रोटी पर' 2006, 'धूप रंगे दिन' 2007, 'नागकेसर हवा' 2011 आदि गीत–संग्रह प्रकाशित हुए। इन्होंने 'सूखती नहीं वह नदी' नाम से मुक्तछंद की कविताओं का संग्रह भी प्रकाशित किया है। इनका एक उपन्यास 'जल झुका हिरन' प्रकाशित है। इनकी आलोचना की पुस्तक 'मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी का आधुनिक काव्य' भी प्रकाशित है। शान्ति सुमन ने नवगीत पत्रिका 'अन्यथा' तथा जनवादी पत्रिका 'बीज' का सम्पादन किया है। इनके नाम दर्जन भर साहित्यिक सम्मान और पुरस्कार हैं। डॉ0 शिवकुमार मिश्र ने शान्ति सुमन के गीतों को मानवीय चिन्ता के एकात्म से उपजे गीत माना है। डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ने माना है कि शान्ति सुमन के गीतों का महत्व उनके विशिष्ट रचाव में है। लगता है कि लोकगीत की आत्मा नई देह पा गई है। उमाकान्त मालवीय ने शान्ति सुमन को नवगीत की एकमात्र कवयित्री माना। डॉ0 सुरेश गौतम ने कहा कि शान्ति सुमन का नाम लिये बिना नवगीत का इतिहास अधूरा है। ओम प्रभाकर ने इनके नवगीतों में अछूता प्रस्तुत करने की तड़प देखी है। डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद ने इनके नवगीतों को समकालीन जिन्दगी के संवेदनशील क्षणों के दस्तावेज कहा है। मदन कश्यप के शब्दों में शान्ति सुमन हमारे समय के दुर्लभ गीतकारों में हैं। इस प्रकार कुमार रवीन्द्र, सत्यनारायण, देवेन्द्र

कुमार, डॉ0 रेवतीरमण आदि ने भी शान्ति सुमन को गीत के फलक पर उनके आविर्भाव को एक घटना माना है। साहित्यिक संस्था 'सर्जना' में सम्पन्न काव्य–आयोजन के अवसर पर शान्ति सुमन की गीत–धारा के माध्यम से आधुनिक हिन्दी गीत जगत के विभिन्न संवेदनात्मक एवं वैचारिक पड़ावों की पड़ताल के लिए अमित प्रभाकर ने यह साक्षात्कार समायोजित किया है। पाठकों के लिए प्रश्न और उत्तर प्रस्तुत हैं –

प्रश्न – अपने गीत–सृजन के बारे में और अपनी गीत–यात्रा के बारे में भी कहें।

उत्तर – माध्यमिक शिक्षा के समय मैंने गीत लिखना शुरू किया था। किन्तु उसका गुणात्मक विकास '60 से हुआ। मेरे गीत नवगीत के दौर की रचना हैं। अपने पूर्व के गीतों की अपेक्षा नवगीत में संवेदनाओं की सघनता के साथ मानवीयता का विस्तार भी है। आत्माभिषेक के कारण नवगीत नयी अनुभूतियों के गीत हैं। नवगीत को मैंने काव्याभिव्यक्ति के लिये अनिवार्य विधा के रूप में स्वीकार किया। 'सुलगते पसीने' से मेरे गीतों की दिशा बदलती है और उनमें विकास का नया मोड़ दिखने लगता है। मेरी दृष्टि में किसी भी कला–संस्कृति का मूलाधार अर्थ–व्यवस्था होती है। मूलाधार में परिलक्षित होने वाले बदलाव का प्रतिबिम्ब कमोवेश कला–संस्कृति में अवश्य होता है। इसलिये मेरी रचनाओं में भी इन बदलावों का कालानुसार प्रक्षेपण हुआ है। यह प्रक्रिया बदलते हुए समय के साथ अधिक संवेदनशील और सहज होती गयी है। इसलिये मेरे नवगीत में व्यवस्था की सतह पर हो रहे बदलाव भी शामिल हुए। संघर्षरत श्रमजीवी जन के दैनंदिन सुख–दुख, आशा–आकांक्षा के साथ व्यवस्था से उनके प्रतिरोध भी गीत के कथ्य बने।

प्रश्न – कविता और गीत के अन्तर्सम्बन्ध के बारे में आपके विचार क्या हैं ?

उत्तर – नयी कविता छन्द को स्वीकार नहीं करती, परन्तु वह छन्दमुक्त नहीं होती। छन्द के रूप बदल जाते हैं। जिस अर्थ–लय की बात कविता करती है, वह भी गीत की ही सम्पदा है। वैसे विस्तार से देखें तो मात्रिक और वर्णिक रचनाओं में भी कविता (गीत) होती है और गद्य में भी। कविता में गीत के तत्त्व पाये जाते हैं। जिन दिनों कविता लिखी जा रही थी, उसके पड़ोस में गीत की रचना भी पूरी त्वरा से हो

रही थी। कोई ऐसी कविता नहीं होती जिसमें गीत का समभाग नहीं हो और कभी–कभी गीत में भी कविता की संभावना बनी रहती है।

प्रश्न – आपने गीत विधा ही क्यों चुनी ?

उत्तर – कथ्य और शिल्प की जिस ताजगी और नयापन पर मेरी दृष्टि गई, वह नवगीत का ही दौर था। जीवन से जिस आसक्ति की अभिव्यक्ति नवगीत में हुई, उससे ही समाज के पुराने मूल्यों से लड़ने की चुनौती आई। अपनी संवेदनाओं को व्यक्त करने की सहजता मुझको गीत में ही मिली। यद्यपि गीत रचना सरल नहीं है, फिर भी मेरे कथ्य, अनुभवों और विचारों–संवेदनाओं को गीत का फार्म ही अनुकूल लगा। इसलिए मैं मूलतः गीतकार हूँ। गीत मानव समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। जब तक जीवन है, जीवन में रागात्मकता है, गीत की प्रासंगिकता बनी रहेगी। यह मानसिक द्वन्द्वों, तनावों और श्रम–शक्ति के ह्रास से उत्पन्न थकानों को कम करने का सबसे सशक्त माध्यम है। गीत–रचना मेरी रचनात्मक विवशता है। मैं अपने भावों और विचारों को व्यक्त करने के लिये मित्र विधा के रूप में गीत को ही देखती हूँ। विधा कोई भी कमजोर नहीं होती। हर विधा की अपनी सीमायें भी होती हैं। महान रचनाकार विधागत सीमा का अतिक्रमण करता है और विधा को विकसित करने में अपनी भूमिका निभाता है।

प्रश्न – आपने गीत विधा पर केन्द्रित एक पत्रिका 'अन्यथा' निकाली थी। उसे अकाल ही क्यों स्थगित कर दिया ?

उत्तर – हाँ, मैंने नवगीत पर केन्द्रित एक पत्रिका 'अन्यथा' नाम से निकाली थी। उसको अकाल स्थगित करने के पीछे के कारण बड़े नहीं थे। वह एक अनियतकालीन पत्रिका थी। उसके निकलने की संभावना अस्त नहीं हुई है। उसके पहले मैंने 1963–'64 में 'सर्जना' नाम से भी एक पत्रिका सम्पादित की थी। मित्रों के अंतर्विरोधों के कारण वह आगे नहीं निकल पाई। दो–तीन अंक उसके आये थे। 'अन्यथा' उसकी जगह पर ही आई थी। उन दिनों मैं अपने शोधकार्य में व्यस्त थी। 'अन्यथा' का पहला अंक नवगीत पर शोध करने वालों के लिए आज भी महत्वपूर्ण है।

प्रश्न – गीत रचना के संबंध में आपकी अवधारणा क्या है ?

उत्तर – गीत एक कठिन रचना कर्म है। उसकी रचना–प्रक्रिया

अत्यंत जटिल होती है। गीत का अपना रचनात्मक अनुशासन होता है। गीत–रचना में वस्तु और रूप की द्वन्द्वात्मक एकता अगर नहीं है तो वह गीत नहीं है। गीत–रचना को लोकप्रिय और संवेदनात्मक बनाने के लिये संगीत के साथ लय और लोकधुनों, लोक मुहावरों और लोक शब्दावलियों का प्रयोग आवश्यक है। इनके प्रयोग में सावधानी की जरूरत है, अन्यथा गीत में रूपवाद और सरलीकरण के आने की गुंजाइश बनी रहती है। गीतकार की जन–जीवन में पैठ जितनी गहरी होगी, रचना उतनी ही दुहरी और भावप्रवण होगी। इससे रचना के लिये कच्चे माल का प्राचुर्य बना रहता है। जन–जीवन से रचनाकार की दूरी वैचारिक रिक्तता का कारक होती है। ऐसी स्थिति में गीतकार अपनी रिक्तता को ढँकने के लिए कला का अतिरिक्त सहारा लेता है। फलतः गीत रूपवाद में फँसकर अमूर्त्तन से ग्रस्त हो जाती है।

प्रश्न – क्या कविता और गीत एक दूसरे के पूरक हैं ?

उत्तर – पहले गीत के पड़ोस में कविता होती थी। अब पड़ोस बदल जाया करता है। फिर भी गीत मनःस्थितियों की रचना है और कविता परिस्थितियों की। गीत में शब्दों के ध्वन्यात्मक सौन्दर्य और अनुगूँजात्मक प्रभाव का विशेष महत्व होता है। कविता में शब्दों के अर्थानुभवों, अर्थों की लय, अर्थ–विश्लेषण की अपूर्व शक्ति अन्तर्निहित होती है। अर्थात् गीत और कविता परस्पर विरोधी नहीं, प्रत्युत एक दूसरे के समान्तर स्वतंत्र विधायें हैं। उनके आपस में पूरक बनने की संभावना भी बनी रहती है। जिस तरह अच्छी कविता के लिए गहरी भाव–प्रवणता, सघन अनुभूति, सहज काव्य–भाषा और सम्प्रेषण में सहायक बिम्ब–प्रतीकों की उपस्थिति अनिवार्य है उसी तरह अच्छे और कालजयी गीतों की रचना के लिये विचारधारात्मक और सौन्दर्यात्मक होना अति आवश्यक है। समकाल के गीतों का वैचारिक आधार जनवादी विचारधारा है। गीतों में बिम्ब–प्रतीक कथ्य के अनुरूप होते हैं।

प्रश्न – क्या आज गीत और जनसाधारण में संवादहीनता की स्थिति है ?

उत्तर – जिस जन साधारण के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा और पूरे जीवन–संघर्ष पर गीत आधारित होता है, उसमें और जनसाधारण में संवादहीनता की स्थिति हो ही नहीं सकती। मैं अपने अनुभवों से जानती

हूँ कि आज गीतों से जनसाधारण का संपर्क निरन्तर बढ़ रहा है। गीतकारों को अपनी रचना (गीत) का स्तर जनता के स्तर के अनुरूप रखना होता है और धीरे–धीरे अपनी रचना का स्तर ऊपर उठाना होता है। ताकि गीत के अनुरूप जनता की मानसिकता का उन्नयन हो।

प्रश्न – क्या विचारधारा के द्वन्द्व का महत्व आपकी दृष्टि में है ?

उत्तर – हर रचनाकार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संघर्ष में ही विकसित होता है। प्रगतिशील और प्रतिगामी तथा जनपक्ष और प्रतिपक्ष की विचारधाराओं में तीव्र संघर्ष होता है। मैंने अपने गीतों में इसी द्वन्द्व और सामाजिक चेतना के अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त किया है।

प्रश्न – गीत में कल्पना की भूमिका क्या है ? क्या वह निरपेक्ष होती है ?

उत्तर – गीत में ही नहीं, किसी भी कलाकृति में कल्पना का उपयोग सोद्देश्य और वस्तु–सत्य के सापेक्ष होता है। कल्पनाशीलता कभी निरपेक्ष नहीं हो सकती। निपरेक्ष कल्पना किसी भी रचना को अमूर्त बनाती है। कल्पना यथार्थ को तराशने और उसमें सौन्दर्य भरने का काम करती है। यथार्थ के निरीक्षण, विश्लेषण और तुलना के लिये रचना (गीत) में कल्पना शक्ति का प्रयोग अनिवार्य है। कल्पना ही वह शक्ति है जिससे समकाल के रचनाकारों की स्तरीयता का निर्णय होता है। रचना में विशिष्ट रचाव की दृष्टि भी होती है।

प्रश्न – लोकगीत के संदर्भ में आपके क्या विचार है ?

उत्तर – कोई भी गीत कालान्तर में लोकगीत की पंक्ति में शामिल हो सकता है। रचना के समय गीत केवल गीत होता है। गीत जब जनता की जुबान पर चढ़ जाता है, गीतकार की निजता सामूहिकता में तिरोहित हो जाती है, गीतकार की अनुभूति बहुसंख्यक जनता की अनुभूति और संस्कार में बदल जाती है तब वह लोकगीत बन जाता है। जनगीत की तरह लोकगीत भी वृहत्तर सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों से जुड़े होते हैं। हमारे पर्व–त्योहार, शादी–ब्याह आदि के अवसर पर गाये जाने वाले अधिकांश लोकगीत सामन्तवादी और पूंजीवादी समाज व्यवस्था की उपज हैं। इसलिये इनमें प्रतिक्रियावाद और प्रतिगामिता

के तत्त्व अक्सर पाये जाते हैं। इसीलिये आजकल लोकगीतों के पुनर्संस्कार की जरूरत महसूस की जाती है।

प्रश्न – लोकगीत और साहित्यिक गीतों का अन्तर बतायें ?

उत्तर – यदि लोकगीत से आपका तात्पर्य विवाह आदि के अवसर पर गाये जाने वाले मनोरंजनार्थ गाली गीत से है अथवा लोकभाषा में रचित बाजार और फुटपाथी गीतों से है तो उसकी बात मैं नहीं करती। वैसे लोकगीतों से उनका जमीन–आसमान का अन्तर है। अश्लीलता का कोई स्थान लोकगीत में नहीं होता। गीत–रचना में रागात्मकता और रोमांटिकता को देखते हुए लोकगीत और साहित्यिक गीत में कोई बड़ी विभाजक रेखा नहीं है। कई लोकगीत शिल्प और संवेदना की दृष्टि से साहित्यिक गीतों से मिलते–जुलते हैं। कालान्तर में कोई गीत अपनी निजता खोकर और बहुसंख्यक जनता का संस्कार बनकर लोकगीत की संज्ञा से अभिहित हो जाते हैं। अश्लीलता से गीत का कोई संबंध नहीं होता। गीतों की लोकप्रियता का प्रमुख कारक संवेदना और ध्वन्यात्मक अनुगूँजात्मकता और संवाद शैली की उपस्थिति है।

प्रश्न – क्या आज लोकगीत लिखे जा रहे हैं ?

उत्तर – क्षेत्रीय लोकभाषाओं में काफी अच्छे गीत लिखे गये हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। अधिकांश गीत जनता की जुबान पर चढ़कर उनके जीवन और संस्कार का हिस्सा बनते जा रहे हैं। लेकिन ये गीत अभी लोकगीत नहीं बने हैं।

प्रश्न – नवगीत और जनवादी गीत का वैचारिक अन्तर क्या है ?

उत्तर – दोनों के वैचारिक अन्तर को हम दोनों प्रकार के गीतों में व्यक्त बिम्बों की प्रकृति से जान सकते हैं। नवगीत में मध्यवर्गीय सामाजिकता व्यक्त हुई है। उस समाज को व्यापक धरातल मिला है। वह समकालीन जीवन–यथार्थ का संवेदनशील दस्तावेज है। जनवादी गीत में जनपक्षधर रचनात्मक भागीदारी मिलती है। समकालीन जनवादी गीत रचना का वैचारिक आधार वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय जीवन–दृष्टि और सर्वहारा विश्व–दृष्टि से लैस समाजवादी यथार्थवाद है। जनवादी गीत में संघर्षशील श्रमरत जन की मुक्ति–कामना भी है। नवगीत में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक–सांस्कृतिक विसंगतियों और विघटन की विस्तृत अभिव्यक्ति मिलती है। जनवादी गीत इन विसंगितयों के

कारणों तथा इनसे मुक्ति के रास्तों की तलाश करता है ?

प्रश्न – राजनीति से आप गीत का कैसा संबंध स्वीकार करती हैं ?

उत्तर – राजनीति से गीत का संबंध ऐसा है कि राजनीति जिस समाज व्यवस्था को अस्त–व्यस्त करती है, व्यवस्था की उसी पीठ पर चढ़कर गीत समय और समाज को गढ़ता है। वह व्यवस्था का प्रवक्ता नहीं, उसका आलोचक है। कोई भी साहित्य जब राजनीति के पीछे चला है, उसका नुकसान हुआ है। गीत संरचना, शिष्टाचार और प्रतिबद्धता की भाषा है। राजनीति को उससे सीखना चाहिये। राजनीति तोड़ती है, गीत जोड़ने में विश्वास करता है। राजनीति आज विनम्र नहीं है जबकि गीत का मनुष्यता से संबंध लगातार प्रगाढ़ हुआ है। राजनीति के जोड़–तोड़ के विपरीत गीत ने हमेशा समय, समाज और संस्कृति को रचने का काम किया है।

प्रश्न – साहित्य की एक कुशल और लोकप्रिय प्रोफेसर के रूप में नौकरी करते हुए, घर परिवार के विभिन्न आसंगों को जीते–झेलते हुए सृजन की बेचैनी में अपेक्षित एकांत की तलाश के बीच कुछ मुश्किलें भी आती होंगी। बहुत वैयक्तिक न लगे तो अपने इस अहसास को भी बाँटें ?

उत्तर – कुछ भी वैयक्तिक नहीं है। संवेदनायें और विचार शब्दों में ढलकर लोकार्पित हो जाते हैं। विचार और अनुभूतियों के शब्दों में ढलने की प्रक्रिया सरल नहीं है। आगे आने वाला समय सुविधा लेकर आएगा – यही सोचती हुई यहाँ तक आ गई। बढ़ती उम्र के साथ समस्यायें भी आती रहीं। खुशियों ने बहुत कुछ जोड़ा, दुख ने उसके कुछ पन्ने उड़ा दिये। निजी परिवार बड़ा नहीं है। पुत्र अरविन्द और पुत्री चेतना का भी छोटा–छोटा परिवार है। शालीना, ईशान, अपूर्व और श्रेयसी मेरी खुशियों के दस्तावेज हैं। विशाखा और चेतना इन खुशियों को बाँटने वाली प्रमाण पत्र हैं। अपने एकांत का बहुत सारा हिस्सा उनको देती हूँ। कठिन तो रहा घर के काम–काज करते हुए, नौकरी में अपनी छवि बनाते हुए, घर–बाहर के दायित्वों को वहन करते हुए सृजन के लिए एकांत तलाशना। मैं तो कहूँगी कि आज भी स्त्रियों का लेखन–कर्म पुरुषों की भाँति स्वच्छन्द नहीं हो सका है। अस्तु, जब मन के पटल पर भावनायें

और विचार संगुम्फित होकर आकार ग्रहण करने लगते हैं तो एक बेचैनी सी होती है। वह बेचैनी चौका में रहें या कॉलेज में, रास्ते में या कवि–गोष्ठी में अपेक्षित एकांत तलाश ही लेती है और फिर संभव होती है रचना। रचना का जन्म इसी तरह होता है 'मेरे घर में'। गीत इन्हीं संघर्षों के बीच रच जाते हैं।

('संकल्प रथ' मई, 2011 में प्रकाशित)

■